तृतीय अध्याय

मुक्तिबोध के इतिहासबोध की निर्मिति में पूर्व परम्परा का प्रभाव

इतिहासबोध दो शब्दों के संयोग से मिलकर बना है इतिहास और बोध। इतिहास को सामान्यतौर पर 'ऐसा ही था' या 'ऐसा ही हुआ' कहा जाता है। इससे स्पष्ट है कि इतिहास का संबंध अतीत में घटित घटनाओं से निर्मित है। अतीत में घटित घटनाओं का संबंध उसके यथार्थ से भी है, जिसमें संपूर्ण सकारात्मक एवं नकारात्मक पक्षों का भी उल्लेख होता है। बोध का अर्थ है- समझ। अर्थात् इतिहास में घटित घटनाओं की समझ। इसी को संपूर्ण अर्थबोध के संदर्भ में 'इतिहासबोध' कहते है।

इतिहासबोध का संबंध घटित घटनाओं से तो है ही साथ ही साथ संपूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों के आंतरिक एवं बाह्य परिस्थितियों के ज्ञान से भी है। यह किसी भौगोलिक क्षेत्र के व्यक्ति, समाज या देश से संबंधित तथ्यात्मक घटनाओं एवं वस्तुओं का विवेचन, उसके उत्पत्ति एवं विकास की व्याख्या प्रस्तुत करता है। इसीलिए इतिहासबोध का संबंध व्यापक परिप्रेक्ष्य में लिया जाता है। डॉ. अमरनाथ के अनुसार- "अतीत के किसी तथ्य, तत्व एवं प्रवृत्ति के वर्णन, विवरण, विवेचन का विश्लेषण को जो कि कालविशेष या कालक्रम की दृष्टि से किया गया हो, इतिहास कहा जा सकता है।"[1] प्रत्येक कालखंड का एक खास इतिहास रहा

हैं, चाहे वह सामाजिक, राजनीतिक धार्मिक-सांस्कृतिक एवं आर्थिक ही क्यों न हो। उसकी भी एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि रही है।

मानव समाज का इतिहास मानव के विकास क्रम एवं उसके प्रत्येक कालखंड से श्रुति एवं मौखिक परंपरा से आगे बढ़ा और आज आधुनिक यांत्रिकीयुग में इसका लिखित रूप भी देखने एवं पढ़ने को मिलता है। इतिहास के इन सभी विकास क्रमों का अध्ययन साहित्य में भी करते हैं। साहित्य इन समस्त पक्षों का चित्रण बड़ी सूक्ष्मता से करता है, क्योंकि साहित्य में मानव समाज एवं उससे निर्मित सभ्यता का मूल्यांकन मानवीय संवेदनाओं को ध्यान में रखकर किया जाता है। साहित्य का इतिहास प्रत्येक युग की संरचना को अभिव्यक्त करती है। आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल एवं आधुनिक काल इन चारों कालों की अलग-अलग सामाजिक, सांस्कृतिक राजनीतिक एवं धार्मिक विशेषता रही है। साहित्यकार प्रत्येक युग की परिस्थितियों का भी चित्रण करता है। आदिकालीन साहित्य के इतिहास में सामंती राजशाही व्यवस्था की व्याख्या की गयी है, जो उस कालखंड के तत्कालीन व्यवस्था को अभिव्यंजित करती है। साहित्य का इतिहास समस्त मानवजगत के सूक्ष्म स्वरूपों की व्याख्या करता है। प्रभाकर श्रोत्रिय के अनुसार- “साहित्य अपने समय की राजनीतिक, सामाजिक या आर्थिक संरचना में भले ही कोई प्रत्यक्ष हस्तक्षेप न करता हो, लेकिन वह मनुष्य की अंतर्रचना में अनिवार्य हिस्सा लेता है ताकि वह इतिहास को समझने की दृष्टि और उसे बदलने का सामर्थ्य अपने भीतर विकसित करता चले, क्योंकि अंततः समय को बदलने का दायित्व जिस मनुष्य पर है उसकी चेतना, राग और दृष्टि में गत्यात्मक विकास की जरूरत से इन्कार नहीं किया जा सकता।”[2]

हिंदी साहित्य में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का महत्वपूर्ण स्थान है। शुक्लजी हिंदी साहित्य के इतिहास एवं आलोचना का व्यवस्थित रूपरेखा प्रस्तुत किया है। उनकी प्रसिद्ध कृति ‘हिंदी साहित्य का इतिहास’, में साहित्येतिहास की आलोचनात्मक दृष्टि भी अभिव्यक्ति हुई है- “जब कि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब है, जब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य परंपरा के साथ उनका सामजंस्य दिखाना ही ‘साहित्य का इतिहास’ कहलाता है।”[3] शुक्लजी का इतिहासबोध समाज के बदलते स्वरूप एवं जनता की चित्तवृत्ति को केन्द्र में रखकर किया गया है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने साहित्य को ‘अविच्छिन्न परम्परा’ तथा उसमें प्रतिफलित क्रिया-प्रतिक्रियाओं के संदर्भ में व्याख्यायित किया हैं। उनका मानना है- “मूल व्याख्यानों में से बहुत से अंश छोड़ दिए गए हैं, जो हिंदी-भाषी साहित्यिकों के लिए अनावश्यक थे। फिर भी इस बात का यथासंभंव ध्यान रखा गया है कि प्रवाह में बाधा न पड़े। इसके लिए कभी-कभी कोई-कोई बात दो जगत भी आ जाने दी गई है। ऐसा प्रत्यन्त किया गया है कि हिंदी-साहित्य को संपूर्ण भारतीय साहित्य से अविच्छिन्न करके न देखा जाए।”[4] अर्थात् द्विवेदी साहित्य के इतिहासबोध को संपूर्णता के परिप्रेक्ष्य में देखने की बात कही है। इसीलिए ‘हिंदी साहित्य की भूमिका’ में साहित्य के इतिहास एवं उसके इतिहासबोध को ‘भारतीय चिंता का स्वाभाविक विकास’ कहा है। क्योंकि इतिहासबोध मानवजाति के समूल पक्ष का विवेचन करती है।

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार- “वैसे, देखा जाए तो साहित्यिक रचनाएँ भी मानवीय क्रियाकलापों से भिन्न नहीं है, अपितु वे विशेष वर्ग के मनुष्यों की विशिष्ट क्रियाओं की सूचक होती है; अतः उनके इतिहास को समझने के लिए उनके रचयिताओं तथा उनसे संबंधित स्थितियों, परिस्थितियों और परम्पराओं को समझना भी आवश्यक है।”[5] डॉ. नामवर सिंह के अनुसार- “अपनी ऐतिहासिक चेतना को जीवन्त बनाये रखने के लिए ऐतिहासिक वास्तविकता की जटिलता का अहसास होते रहना आवश्यक है।”[6] इतिहासबोध की निर्मिति में ‘ऐतिहासिक वास्तविकता की जटिलता’ का ज्ञान आवश्यक है, तभी कोई रचनाकार उसकी तार्किक व्याख्या प्रस्तुत कर सकता है। डॉ. मैनेजर पांडेय के अनुसार- “साहित्य के इतिहास का आधार है, साहित्य के विकासशील स्वरूप की धारणा। साहित्य की निरंतरता और विकासशीलता में आस्था के बिना साहित्य का इतिहास लेखन असंभव है।”[7] ई. एच. आर के शब्दों में “कठनाई यह है कि अतीत के सभी तथ्य ऐतिहासिक तथ्य नहीं होते और न ही इतिहासकार उन्हें तथ्य के रूप में स्वीकार करते हैं। ऐतिहासिक तथ्यों को अतीत के दूसरे तथ्यों से अलगाने का क्या आधार हो सकता है?”[8] ई. एच. आर ने ऐतिहासिक तथ्य का आधार क्या होना चाहिए। इसपर विचार किया हैं।

साहित्य और इतिहास दोनों अलग-अलग संदर्भों में व्याख्यायित होता है। दोनों का परिप्रेक्ष्य भी अलग-अलग है। डॉ. मैनेजर पांडेय की दृष्टि में- “साहित्य एक जीवंत गतिशील प्रक्रिया है, रचनाकर्म एक सामाजिक व्यवहार है। साहित्य को सामाजिक सांस्कृतिक व्यवहार के अंग के रूप में एक विशिष्ट रचनात्मक

व्यवहार समझना साहित्येतिहास की नई धारणा है।"[9] साहित्य में इतिहासबोध की अवधारणा भी इसी से निर्मित होती जान पड़ती है।

मुक्तिबोध का इतिहासबोध उक्त आलोचकों की तुलना में भिन्न हैं। उनके शब्दों में- "समाज की गतिशीलता में राजनैतिक प्रक्रिया अनेक प्रक्रियाओं में से एक है। समाज को विकासशील बनानेवाली अन्य महत्वपूर्ण प्रक्रिया है, सांस्कृतिक प्रक्रिया।"[10] मुक्तिबोध इतिहासबोध की निर्मिति में राजनैतिक प्रक्रिया को महत्वपूर्ण माना है। इसीलिए उनकी दृष्टि में इतिहास में सांस्कृतिक घटक की भूमिका होती है। साहित्य, इतिहास एवं इतिहासबोध तीनों का अन्योन्याश्रित संबंध होता है। साहित्य में इतिहास की घटित घटनाओं का विवेचन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किया गया है। साहित्यकार युगीन तथ्य एवं तत्व को जिस 'बोध' से अभिव्यक्त करता है, साहित्यकार के 'इतिहासबोध' की पृष्ठभूमि भी उसी अनुरूप अभिव्यंजित होती है।

साहित्येतिहास में 'मार्क्सवाद' एक विचारधारा भी है और दृष्टि भी। साहित्य में मार्क्सवाद का संबंध ऐतिहासिक-भौतिकवाद एवं उसके विकासप्रक्रिया से संबंधित है। डॉ. रामविलास शर्मा ने हिंदी साहित्य को 'हिंदी जाति का साहित्य' के रूप में व्याख्यायित किया है। अर्थात् रचनाकार अपनी रचना में ऐतिहासिक सामाजिक एवं सांस्कृतिकबोध का रूपायन किसी खास संदर्भ को केन्द्र में रखकर करते हैं। जैसे आचार्य शुक्ल जी की दृष्टि में 'साहित्य का रागात्मक संबंध', 'चित्तवृत्तियों की परम्परा' को प्रमुखता से उजागर किया है।

डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने भी ‘हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास’ में साहित्य में परंपरा युगीन अंतर्विरोध से उत्पन्न द्वंद्व के कारण भिन्न-भिन्न आंदोलनों, उसकी धाराओं एवं प्रवृत्तियों की ओर रेखांकित किया है। गुप्तजी साहित्य के विकासप्रक्रिया की व्याख्या में तथ्यों को प्रमुखता दी है। ऐतिहासिक तथ्य घटनाओं का गुंफन है। वह पूर्व परंपरा, युगीन वातावरण इत्यादि को भी अभिव्यंजित करता है।

वस्तुतः साहित्य और इतिहास में युग की घटनाओं क्रियाओं एवं प्रतिक्रयाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। युगबोध का संदर्भ लेखक की दृष्टि से निर्मित होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से लेकर डॉ. मैनेजर पांडेय, सभी आलोचकों ने युगीन संदर्भ का उल्लेख तत्कालीन एवं समकालीन संदर्भ से किया है। साहित्य का उद्देश्य समाज के गतिशील प्रक्रिया को व्याख्यायित करना है। साहित्य की गतिशीलता एवं उसके उद्देश्य के संबंध में मुंशी प्रेमचंद ने कहा है- “साहित्य की बहुत परिभाषाएँ की गई हैं, पर मेरे विचार से उसकी सर्वोत्तक परिभाषा ‘जीवन की आलोचना’ है। चाहे वह निबंध के रूप में हो, चाहे कहानियों के, या काव्य के, उसे हमारे जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिए।”[11]

वस्तुतः इतिहासबोध युगीन तथ्य एवं तत्व को उजागर करता है। इसीलिए साहित्यकार उसके राजनैतिक, सामाजिक-सांस्कृतिक एवं आर्थिक संरचनाओं का भी विवेचन प्रस्तुत करता है। मुक्तिबोध ने भी इसीलिए इसे सांस्कृतिक प्रक्रिया में भी देखने का प्रयास किया है। वैचारिक दृष्टि से मुक्तिबोध का

इतिहासबोध उपर्युक्त अधिकांश पक्षों पर तर्कसम्मत रूप से विचार प्रदान किया है।

हिन्दी साहित्य के कालखंड में अनेक रचनाकार एवं आलोचक अलग-अलग दृष्टिकोण से रचना एवं आलोचना को प्रतिष्ठित किया है। विश्व के महानतम् साहित्य में 'रामायण' 'महाभारत' और 'श्रीरामचरितमानस' को अंकित किया गया है, जो प्राचीनकाल के युगीन संदर्भ में एवं आज भी आलोचना एवं विमर्श में देखे जाते हैं। प्रत्येक रचनाकार का साहित्यबोध उस युगीन व्यवस्था की संरचनाओं से संदर्भित होती है। इसीलिए वाल्मीकि का इतिहासबोध वेदव्यास के इतिहासबोध से भिन्न हैं और तुलसीदास का इतिहासबोध वाल्मीकि के इतिहासबोध से।

भक्तिकालीन साहित्य की विवेचना अनेक साहित्यकारों ने अलग-अलग संदर्भ में किया है। भक्तिकालीन कवि की रचनाओं में तत्कालीन समाज की वस्तुस्थिति का इतिहास है और इतिहासबोध भी। कबीर, तुलसी, दादू, नानक, मीरा एवं रहीम आदि अधिकांश कवियों ने सामंती राजशाही व्यवस्था के आडंबर, छुआछूत, ऊँच-नीच इत्यादि का उल्लेख पद्य के माध्यम से किया है। कबीर की खुली चुनौती जितना मंदिर में बैठे पंडित के लिए था, उतनी ही बड़ी चुनौती मस्जिद में बैठे मौलवी के लिए।

"काजी मुलाँ भ्रमियाँ, चल्या दुनीं कै साथि।
दिल थैं दीन बिसारिया, करद लई जब हाथि।।7।।"[12]

रचनाकार चाहे वह कवि, कथाकार, उपन्यासकार और आलोचक क्यों न हो, वह समाज के वर्तमान इतिहास से मुक्त नहीं होता है। मीराबाई भी तत्कालीन समाज में स्त्री स्वर के लिए क्रांतिकारी कदम उठायीं, जो आज भी प्रासंगिक हैं। इन सभी रचनाकारों के ऐतिहासिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक बोध के स्तर पर अलग-अलग इतिहासकार एवं आलोचक ने इन्हें प्रतिष्ठित किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, रामविलास शर्मा, नंददुलारे वाजपेयी, शिवदान सिंह चौहान, मुक्तिबोध, नामवर सिंह आदि साहित्यकार, इतिहासकार और आलोचक की निम्न परंपरा रही हैः-

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

साहित्य के इतिहास का व्यवस्थित एवं आलोचनात्मक स्वरूप आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की देन है। इसके तदोपरांत अनेक इतिहासकारों ने हिंदी साहित्य का इतिहास लिखा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का इतिहासबोध हिंदी भाषा के जातीयबोध से प्रभावित मालूम होती है। 'हिंदी साहित्य के इतिहास' पुस्तक में आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल एवं आधुनिक काल के उनके साहित्यिक चिंतन को देखें तो साहित्य के विकास में सामाजिक राजनैतिक एवं सांस्कृतिक तत्व मौजूद है साथ ही साथ संपूर्ण भाषायिक चेतना का भी स्वर मालूम होता है। डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार- "शुक्ल ने संसार को कहीं भी मिथ्या नहीं कहा। वह उसे रूप-समुद्र कहते हैं। मनुष्य को अपनी सत्ता का ज्ञान भी अलौकिक जीवन से होता है। इस तरह ज्ञान का आधार आलौकिक नहीं है।"[13] शुक्लजी का इतिहासबोध पर वाल्मीकि, भवभूति, तुलसीदास के आदर्शात्मक कलात्मक

सौन्दर्य, का प्रभाव है। इसीलिए तुलसी के राम के आदर्शात्मक भावभूमि को प्रमुखता से उजागर किया है एवं मुक्तकंड से प्रशंसा भी की है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का इतिहासबोध एवं मुक्तिबोध के इतिहासबोध में आदर्शात्मक भाव का अंतर है। मुक्तिबोध का इतिहासबोध द्वंद्वात्मक-भौतिकवाद से प्रभावित है, जिसमें पूँजीपति और मजदूर के बीच का अंर्तद्वंद्व स्पष्ट तौर से उजागर हुआ है। शुक्लजी ने साहित्य के इतिहास को तार्किक रूप से प्रस्तुत तो किया, लेकिन वह युग एवं परिवेश से प्रभावित है। उनके तुलसी के 'राम' का आदर्शात्मक स्वर है, जबकि मुक्तिबोध की दृष्टि में 'तुलसी के राम' का चरित्र वर्णाश्रम व्यवस्था से प्रेरित है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास', 'गोस्वामी तुलसीदास', 'जायसी ग्रंथावली', 'सूरदास', 'रस मिमांसा', और चिंतामणि भाग एक, भाग दो में व्यवहारिक एवं सैद्धांतिक समीक्षा की है। शुक्लजी ने गोचर-दृष्टि को प्रमुखता से उजागर किया है अर्थात् अलौकिक गुह्य और अतीन्द्रिय चेतना को उन्होंने अस्वीकारा है। गोचर जगत में व्याप्त घटनात्मक तत्वों का विवेचन उन्होंने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से किया है। उन्होंने तुलसीदास की रचना 'रामचरितमानस' की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है एवं तुलसीदास को लोकचेतना का कवि भी कहा है। आचार्य शुक्ल एवं उनकी परम्परा के रचनाकारों में मौलिक दृष्टिकोण का प्रभाव देखा जा सकता है।

डॉ. रामदरश मिश्र के अनुसार- “साहित्य के क्षेत्र में शुक्लजी की लोकमंगल की भावना का स्वर सर्वत्र मुखर है।”[14] मुक्तिबोध की दृष्टि में समाज

के विकास या यूँ कहें तो मानवचेतना के विकास में ऐतिहासिक-सामाजिक सत्ता केन्द्रित होती है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

हिंदी साहित्येतिहास में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के बाद आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्येतिहास में लोक एवं शास्त्र की चिंतनधाराओं का गहन अध्ययन है। उन्होंने भारतीय परंपरा, इतिहास एवं संस्कृति का सूक्ष्म विवेचन किया है, जो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की दृष्टि से भिन्न हैं। 'हिंदी साहित्य का आदिकाल', 'हिन्दी साहित्य: उद्भव और विकास' एवं 'हिंदी साहित्य की भूमिका', 'अशोक के फूल' आदि रचनाओं में भारतीय संस्कृति के मूलरूप, अर्थबोध एवं उसके बदलते परंपरा को नवीन दृष्टि प्रदान की है। साहित्य सृजन में वे मानववाद के पक्षधर रहे है। जनता चाहे वह शिक्षित हो या अशिक्षित मानवीय संवेदनात्मक अनुभूति सभी में विद्यमान होती है- "इस देश का सबसे पुराना उपलब्ध साहित्य आर्यों का है। इन्हीं आर्यों के धर्म और विश्वास नाना अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में बनते-बदलते अब तक इस देश की अधिकांश जनता के निजी धर्म और विश्वास बने हुए हैं। परन्तु आर्यों का साहित्य कितना भी पुराना और विशाल क्यों न हो, भारतवर्ष के समूचे जनसमूह के विकास के अध्ययन के लिए न तो वह पर्याप्त ही है और न अविसंवादी है।"[15]

मुक्तिबोध ने साहित्य का संबंध इतिहास से किसप्रकार अन्योन्याश्रित है। इसका उल्लेख साहित्य के मनोवैज्ञानिक संदर्भ एवं मनोवृत्ति से जोड़कर देखा है।

साहित्य का इतिहास और उसके शासन सत्ता से गहरा संबंध होता है, इसीलिए मुक्तिबोध हजारीप्रसाद द्विवेदी की इतिहासदृष्टि से भिन्न राय रखते हैं। 'भारत इतिहास और संस्कृति' पुस्तक में सांस्कृतिक प्रक्रिया का भी उल्लेख इस प्रकार है- "आज से पाँच साढ़े-पाँच हजार वर्ष पूर्व, भारत के उत्तर-पश्चिम कोण में आर्य अश्वारोहियों के दल के दल एकत्र होने लगे थे। उन्हें अपनी विकास प्रसार यात्रा में अनेक युद्ध करने पड़े। उन्होंने विविध वैचारिक आंदोलनों का सूत्रपात किया।"[16] द्विवेदीजी साहित्य के इतिहासबोध में 'लोक' को प्रमुखता को केन्द्र में रखा है।

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी को सौन्दर्यवादी आलोचक कहा गया है। नंददुलारे वाजपेयी मूल रूप से काव्यों की अंतर्वृत्तियों और कलात्मक सौष्ठव की विवेचना की है। छायावाद के संबंध में इनकी मान्यताओं का विशेष महत्व है। उनकी महत्वपूर्ण रचना 'हिंदी साहित्य: बीसवीं शताब्दी' 'नया साहित्यः नए प्रश्न' 'महाकवि सूरदास' आदि रचनाओं में काव्य के तत्व एवं उसके सौन्दर्य पक्ष का विवेचन किया है। वे साहित्य और कला की विवेचना दार्शनिक दृष्टि के आधार रखने के विरोधी थे। नंददुलारे वाजपेयी काव्य में मत, तत्व सिद्धांत आदि पर आचार्य शुक्ल से इतर व्याख्या प्रस्तुत की है- "नई छायावादी काव्यधारा का एक आध्यात्मिक पक्ष है, परंतु उसकी मुख्य प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवीय और सांस्कृतिक है।"[17] छायावाद का दौर भारतीय इतिहास में परतंत्रता का दौर था। मुक्तिबोध ने इस संदर्भ में लिखा है। छायावाद की काव्य-भूमि एवं उसकी

सांस्कृतिक विरासत भिन्न है- "छायावाद में वर्णित करूणा व्यक्ति की वास्तविक करूणा नहीं, जिंदगी के भीतर करूणास्पद परिस्थितियों से उत्पन्न मनोभावों का चित्रण नहीं।"[18]

मुक्तिबोध साहित्य में जीवन के अनुभूत तत्व एवं उससे उत्पन्न परिस्थिति को अहम मानते हैं। इसीलिए उनके इतिहासबोध में मानव जीवन के कटु सत्य का उद्घाटन सूक्ष्मता से हुआ है। मुक्तिबोध का सौन्दर्य नंददुलारे वाजपेयी के सौन्दर्य से भिन्न है। नंददुलारे वाजपेयी के अनुसार- "सौन्दर्य की और अधिक झुकाव छायावाद युग के काव्य की एक विशेषता रही है। असुंदर, भयानक और विस्मय-कारक अथवा अरोचक का चित्रण नए युग के काव्य की अन्य विशेषता है। यह भी यथार्थवाद की दिशा में बढ़ाया गया एक कदम है।"[19] मुक्तिबोध साहित्य के सौन्दर्यपक्ष को अलग दृष्टि से देखते हैं। उनकी दृष्टि में 'सौन्दर्य की सामाजिक दृष्टि' तत्व का होना आवश्यक है, क्योंकि समाज बहुवैविध्य स्वरूप से निर्मित है।

रामविलास शर्मा

रामविलास शर्मा मार्क्सवादी विचारधारा के सबसे समर्थ आलोचक माने जाते हैं। उनकी आलोचना में प्राचीनता, मध्यकालीन एवं आधुनिकता के व्यापक परिप्रेक्ष्य का उद्घाटन हुआ है। लोकजागरण एवं नवजागरण के विविध संदर्भ का भी उल्लेख बड़े प्रखर रूप से किया गया है। नंदकिशोर नवल के अनुसार- "शुक्लजी की असंगतियां उनके दार्शनिक दृष्टिकोण से भी संबंधित हैं और उनके सामाजिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक दृष्टिकोण से भी। डॉ. शर्मा ने मार्क्सवादी

दृष्टिकोण की सहायता से हिंदी आलोचना को ऐसी तमाम असंगतियों से मुक्त किया।"[20] वे साहित्य के भौतिक एवं सामाजिक पक्ष के अंर्तद्वंद्व को भी व्याख्यायित किए हैं। समाजिक परिवर्तन का आधार सामान्य जनवर्ग होता है। उन्होंने इसका उल्लेख निम्न संदर्भ में किया है- "सामाजिक एवं राजनीतिक क्रांतियों के पीछे जनता की भौतिक शक्ति के साथ-साथ विचार और चिंतन की शक्ति भी काम करती है।"[21] अर्थात् साहित्य के इतिहास में शासन सत्ता का संघर्ष हमेशा से रहा और उसका अंर्तद्वंद्व भी समाज के अधिकांश वर्ग को प्रभावित करता है।

मुक्तिबोध का इतिहासबोध रामविलास शर्मा के इतिहासबोध से भिन्न विचार रखते हैं- "सच्चा ऐतिहासिक दृष्टिकोण वह जो न केवल बाहरी स्थिति से जुड़ी हुई जटिल समस्याओं पर नए ढंग से चिंतन करते हुए हिंदी साहित्य के जातीय रूप के आधार को स्पष्ट किया है।"[22]

मुक्तिबोध का साहित्यबोध सिर्फ भाषा केन्द्रित नहीं है, अपितु उसके सामाजिक विकास की प्रक्रिया को केन्द्रीय तत्व माना है।

शिवदानसिंह चौहान

हिन्दी साहित्य के आलोचना में शिवदानसिंह चौहान का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने हिंदी का कोई इतिहास नहीं लिखा है, लेकिन साहित्य के इतिहास के बदलते स्वरूप का आलोचनात्मक विवेचन किया है। जैसे 'प्रगतिवाद' 'हिंदी साहित्य अस्सी वर्ष' 'आलोचना के मान' इत्यादि। साहित्य के इतिहास के आलोचनात्मक विवेचन में भी साहित्यकार की ऐतिहासिक ज्ञान एवं बोध की

परख होती है। शिवदानसिंह चौहान आलोचना में तटस्था एवं निष्पक्षता के पक्षधर थे। उन्होंने साहित्य, इतिहास एवं संस्कृति इत्यादि की व्याख्या भी किये हैं। मुक्तिबोध प्रगतिशील समाज की विवेचना संवेदनात्मक दृष्टि से करते हैं।

डॉ. रादरश मिश्र के अनुसार- "रामविलासजी ने अपने निबंधों में अतीत के साहित्य का विश्लेषण करते हुए सदैव तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति का ध्यान रखा है। और उन्होंने तुलसी, भूषण, भारतेंदु, मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, पंत, निराला आदि कवियों को अपने जमाने के क्रांतिकारी कवि है। इस क्रांतिकारी का मतलब यही है कि इन कवियों ने अपने युग की पुरानी शोषक प्रवृत्तियों का खंडन किया और जनता का चित्रण पर मानवतावादी परम्परा को आगे बढ़ाया।"[23]

डॉ. मैनेजर पांडेय के अनुसार- "रामविलास शर्मा साहित्य के विशुद्ध आलोचक और इतिहासकार नहीं हैं, उन्होंने हिंदी भाषा और हिन्दी भाषा-भाषी समाज के इतिहास के बारे में भी महत्वपूर्ण स्वतंत्र चिंतन किया है। हिंदी भाषी समाज तथा हिंदी भाषा के जातीय स्वरूप के विकास से व्यष्टि और समष्टि, आत्म और परिवृत्ति में जो मौलिक प्रगतिमूलक क्रिया प्रतिक्रियात्मक संघर्ष अनवरत् चला आया है और चलता जाएगा, और जिसके परिणामस्वरूप ही मनुष्य का सामाजिक जीवन वर्धमान है, और मनुष्य का पूर्ण आत्मविकास संभाव्य बना है- इस महान संघर्ष का मनुष्य ने किसप्रकार सामना किया है, कैसे निरन्तर घटित होने वाले असामंजस्य और वर्ग-वैषम्य का विरोध करके उसने नित-नूतन जीवनप्रद संतुलन प्राप्त किया है और करता जा रहा है- इस समस्त मानवीय

कृतित्व और तन्त्रनित मानव-मूल्यों के निर्माण का इतिहास, मनुष्य की समस्त विकासोन्मुख सचेतन और अवचेतन चेष्टा और परिणाम का विविध भाव, वर्ण, रूप, रस गंधमय अनुभव कला और साहित्य में अपनी विशिष्ट मुर्तिमत्ता के साथ प्रतिलिंबित है।"[24]

मुक्तिबोध सामाजिक विकास प्रक्रिया में उत्पन्न द्वंद्व को प्रमुखता से उजागर किया है। उनकी दृष्टि में- "इस भारतीय समाज की विकास-यात्रा बहुत दिलचस्प है। इसमें कितने उलट-फेर हुए हैं! कितनी जातियाँ यहाँ आयीं और विलीन हो गयीं, किसप्रकार उन्होंने एक-दूसरे को प्रभावित किया और एक होकर आगे बढ़ी यह बड़ी रोचक और स्फूर्तिदायिनी कथा है।"[25] मुक्तिबोध के इतिहासबोध में सामाजिक-सांस्कृतिक विकासक्रम का वैज्ञानिक पहलू शामिल हैं। इसीलिए वे 'कुहरे में ढँका हुआ मानवेतिहास' कहा है- "वैज्ञानिक बताते हैं कि वानरों से मनुष्य का विकास हुआ। आज से लाखों साल पहले की यह घटना है। मनुष्य ने अपनी पशु-तुल्य अवस्था से क्रमशः ऊपर उठते हुए, किसप्रकार अपनी उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया, यह एक मनोरंजक विषय।"[26]

प्रत्येक कालखंड के साहित्य की एक खास परम्परा रही है। चाहे वह आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल या फिर आधुनिक काल ही क्यों न हो हर युग अपने पिछले युग की तुलना में उत्थान या पतन के रूप में आगे बढ़ता है। समाज हमेशा गतिशील रहा है। इसीलिए मुक्तिबोध सामाजिक विन्यास की गतिशीलता को अहम मानते हैं। इस विन्यास में खास परंपरा एवं संस्कृति भी पोषित होती है। इस संदर्भ में शिवदान सिंह चौहान के विचार द्रष्टव्य है- "साहित्य में किसी न

किसी रूप में जीवन सत्य की ही अभिव्यक्ति होती है, और चूंकि मनुष्य का जीवन अर्थात् उसका आचार-विचार, उसके न्याय और धर्म संबंधी विचार और उसकी नैतिकता और राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व्यवस्थाएँ रोज-रोज नहीं बदला करती, इस कारण इस चतुर्दिक वातावरण से प्रभावित मनुष्य के दृष्टिकोण की साहित्य में जो अभिव्यक्ति होती है वह भी तब तक थोड़ा बहुत करके अपने को दुहराती चलती है जबतक कि जीवन में कोई मौलिक परिवर्तन न हो गया हो या जब तक रूढ़ियों में जकड़े हुए समाज का विकास इस सीमा तक अवरूद्ध न हो गया हो कि लोग सामान्य रूप से मौलिक परिवर्तन की आकांक्षा करने लगे हो।”[27]

इसके अतिरिक्त अन्य साहित्यकारों ने भी साहित्येतिहास एवं बोध की अलग-अलग व्याख्या किये हैं। आधुनिक हिंदी साहित्य में साहित्य के इतिहास एवं उसके व्यापक संदर्भ को जब देखें तो हम पाते हैं कि लोक, शास्त्र, जनवादी, सौन्दर्यवादी एवं रसवादी आदि परम्परा रही है। साहित्य के बदलते मानदंड में साहित्यकार के दृष्टिकोण की प्रमुख भूमिका होती है। चाहे वह आदर्शवादी, मार्क्सवादी और समाजवादी ही क्यों न हो। इन सभी दृष्टिकोण का प्रभाव इतिहास और साहित्य दोनों पर पड़ता है। उपर्युक्त रचनाकारों ने साहित्य में तमाम परम्परा को सूक्ष्मता से पेश किया है, जो उसकी रचनाशीलता, उद्यमशीलता एवं ऐतिहासिकता को उद्घाटित करता है।

मुक्तिबोध के इतिहासबोध की निर्मिति में उपर्युक्त तमाम रचनाकारों का गहन अध्ययनबोध है, जो पूर्व परम्परा को नवीन दृष्टि से अर्थबोध प्रदान किया है। किसी भी भौगोलिक ईकाई के विकास में विद्यमान संपूर्ण घटकों का संयोग

होता है। इस संदर्भ में मुक्तिबोध के विचार उल्लेखनीय हैं- "साहित्य एक कला है जिसमें एक विशेष वर्ग (जो कि संस्कृति का अधिकारी हो जाता है) अपनी ऐतिहासिक, सामाजिक स्थिति की आवश्यकताओं के अनुसार अपने प्रधान विषय है। इस विषय निर्वाचन में निश्चय की तत्कालीन मानव-संबंध, विश्व-दृष्टि तथा जीवन-मूल्य प्रकट करते हैं।"[28] रचनाकार साहित्य और इतिहास के बीच के संघर्ष एवं द्वंद्व दोनों को उजागर करता है। मुक्तिबोध मूलतः कवि हैं; लेकिन इतिहास और विश्व के इतिहास में घटित घटनाओं का विवेचन भी तर्कसंगत रूप से किया है। औद्योगिक क्रांति के पश्चात् विश्व के देशों में अनेक परिवर्तन हुआ। भारत भी इस परिवर्तन से अछूता नहीं रहा है। साम्राज्यवाद-पूँजीवाद के विस्तार से समाज में सामाजिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक विभेद उत्पन्न होता है। पूँजी का वर्चश्व बुर्जआ वर्ग के हित में होता है, जो अपने हित के अनुसार समाज में नई संरचना का बीज बोता है। मुक्तिबोध की एक प्रसिद्ध कविता है- 'पूँजीवादी समाज के प्रति' जिसमें शोषण के समस्त दोहन पक्ष का उल्लेख हुआ है।

"इतने प्राण, इतने हाथ; इतनी बुद्धि
इतना ज्ञान, संस्कृति और अंतः शुद्धि
इतना द्विव्य, इतना भव्य, इतनी-शक्ति,
यह सौन्दर्य, वह वैचित्र्य, ईश्वर-भक्ति
इतना काव्य, इतने शब्द, इतने छंद
जितना ढोंग, जितना भोग है निर्बंध
इतना गूढ़, इतना गाढ़, सुंदर जाल
केवल एक जलता सत्य देने आल।"[29]

मुक्तिबोध सभ्यता संस्कृति एवं परम्परा के महत्वपूर्ण पहलुओं पर सूक्ष्म विवेचन किया है। उनका इतिहासबोध इतिहास के सिर्फ घटित-घटनाओं के पक्षों का उल्लेख नहीं करता। अपितु उसके समस्त आंतरिक एवं बाह्यप्रक्रियाओं का भी वर्णन सूक्ष्मता से किया है- "आदिम साम्यवाद, दास, सभ्यता, सामंतवाद, पूँजीवाद और समाजवाद इन क्रमागत समाज रचनाओं में बराबर इसप्रकार का कथा-साहित्य तैयार हुआ। आदिम साम्यवाद में यदि भाषा रही है, नृत्य और काव्य-संगीत रहा है तो पूर्वगामी वीरों की कथाएँ भी रही होंगी।"[30]

मुक्तिबोध ने समाज के विकासक्रम में सामाजिक, भाषायिक एवं सांस्कृतिक तत्व का उल्लेख किया है। मुक्तिबोध साहित्य में प्राचीनता, मध्यकालीनता और आधुनिकता के क्रमिक विकास का विवेचन इस रूप में करते हैं- "अर्थात् जिस युग में साहित्य एक नवीन अ-पूर्व-निश्चित दिशा की ओर मुड़ता है, वहाँ किसी पूर्वकालीन परम्परा का आसरा न होने के कारण प्रयोगावस्था में से गुजरना पड़ता है। निःसंदेह प्रयोगावस्था के इस साहित्य में कलात्मक दृष्टि से, कई अक्षम्य त्रुटियाँ भी होंगी। किंतु परम्परा के विकसित हो जाने पर उसी में श्रेष्ठ कला के दर्शन होंगे।"[31]

उनकी अधिकांश रचनाओं में युगीन बोध का विवेचन है। 'कामायनी: एक पुनर्विचार', 'एक साहित्यिक की डायरी', 'भारत: इतिहास और संस्कृति', इत्यादि रचनाओं में पूर्व निर्मित साहित्यिक परम्परा से भिन्न इतिहासबोध है। प्रसाद की प्रसिद्ध रचना 'कामायनी' महाकाव्य में आध्यात्मिक दृष्टि भी है, जबकि मुक्तिबोध 'कामायनी' को फैन्टेसी करार दिए हैं। उन्होंने साहित्य में सृजनात्मक

पक्ष का विवेचन मानवीय दृष्टि से किया है। मुक्तिबोध की 'मानवीयता' संपूर्णता में संप्रेषित हुआ है। इसीलिए मुक्तिबोध की कविताओं में मानवता का इतिहास एवं उसकी वृत्ति का भी विवेचन है। मुक्तिबोध की उत्तरार्द्ध की कविताओं में आधुनिक समाज एवं व्यवस्था का सजीव चित्रण है। उनकी प्रमुख कविता 'ब्रह्मराक्षस', 'अँधेरे में', 'चाँद का मुँह टेढ़ा', इत्यादि में सामाजिक व्यवस्था, रूढ़िता, शासन सत्ता का दंभ और लोकतांत्रिक व्यवस्था की असफलता आदि को उजागर किया गया है। उनकी प्रसिद्ध कविता 'अँधेरे में' आधुनिक पूँजीवादी समाज की विद्रूपता का चित्रण सजीवता से हुआ है। अभिव्यक्ति मनुष्य का स्वभाविक विवेक भी है और अधिकार भी। मुक्तिबोध इन दोनों का उल्लेख इस कविता में बारंबार किए हैं। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार- "'अँधेरे में', कविता की ये अंतिम पंक्तियाँ उस अस्मिता या 'आइडेंटिटी' की खोज की ओर संकेत करती हैं। जो आधुनिक मानव की सबसे ज्वलंत समस्या है।"[32] लेखक अस्मिता की खोज में लगातार इस कविता में 'स्व-संवाद' करता प्रतीत होता है।

> "इसलिए मैं हर गली में
> और हर सड़क पर
> झाँक-झाँककर देखता हूँ हर एक चेहरा,
> प्रत्येक गतिविधि,
> प्रत्येक चरित्र,
> व हर एक आत्मा का इतिहास,
> हर एक देश व राजनीतिक स्थिति और परिवेश।"[33]

डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने इस कविता के मूल कथ्य के विषय में लिखा है- "'अँधेरे में' लंबे खंडो में कवि की समस्या है समाज के उत्थान-पतन और आंदोलनों के बीच अपनी रचना के प्रेरक तत्त्वों का अभिज्ञान, रचना कैसे बाहर से अंदर आती है और फिर कैसे बाहर दूर-दूर तक परिव्याप्त हो जाती है। कविता का अंतिम अंश मुक्तिबोध ही नहीं 'रचना-शीलता' के प्रति ईमानदार हर कवि का अंतिम वक्तव्य और साक्ष्य हो सकता है।"[34] मुक्तिबोध की इस कविता के विषय में अनेक आलोचकों ने अलग-अलग दृष्टिकोण से विचार व्यक्त किया है।

इस कविता की संरचना में जितनी नाटकीयता है उतने ही वैविध्य प्रसंग। इस कविता का इतिहासबोध शासन और सत्ता के गठजोड़ को चित्रित करता है। सामान्य जन इस कविता में शोषित पीड़ित एवं भय-आक्रांत है, जिसमें गाँधी के स्वप्न को टूटते हुए देखा जा सकता है। तानाशाही व्यवस्था में आमजन का जीवन घूटन भरा होता है। समाज और सामाजिक व्यवस्था के बीच 'सामान्य जन' की पीड़ा इस कविता में प्रमुखता से उजागर हुआ है।

मुक्तिबोध की कविता 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में भी इतिहासबोध की व्याख्या हुई है। इस कविता में भी मुक्तिबोध ने सामंती व्यवस्था के स्वरूप को उजागर किया है। औद्योगिक क्रांति के पश्चात् धीरे-धीरे पूँजीवाद का वर्चश्व बढ़ा और नगरों में यह पैठ जमाना शुरू किया। शोषण तंत्र का यह नया रूप है।

"नगर के बीचोबीच
आधी रात-अँधेरे की काली स्याह
शिलाओं से बनी हुई दिवालों के घेरों पर,

अहातों के काँच-टुकड़े-जमे-हुए
ऊँचे-ऊँचे कँधो पर, सिरों पर
चाँदनी की फैली हुई सँवलाई झालरें।"[35]

इस कविता में भी मुक्तिबोध पूँजीवादी व्यवस्था में जनसामान्य की पीड़ा को उकेड़ा है। डॉ. मैनेजर पांडेय के अनुसार- "मुक्तिबोध रचना और आलोचना दोनों ही स्तरों पर इस आधुनिकतावाद के खिलाफ लगातार संघर्ष करते रहे।"[36]

मुक्तिबोध की दृष्टि में, इतिहास का मूल्यांकन तार्किक रूप से होना चाहिए ना कि घटनात्मक तथ्य के आधार पर। इसीलिए उनकी रचना में जितनी व्याकुलता है उतनी ही आत्म-सजगता। यह आत्म-सजगता मुक्तिबोध की चिंतन का परिणाम है।

मुक्तिबोध साहित्य सृजन में परम्परा विरोधी नहीं है, तर्कहीन विचारों के विरोधी हैं। वे साहित्य के सतही पक्ष का उल्लेख निम्न संदर्भ में किया है- "साहित्य का मूल्यांकन निश्चित करते इस 'सतह' का ध्यान रखना ही पड़ता है। कवि का शब्द-चयन छंद-रचना, प्रकृति-वर्णन, स्वभाव-चित्रण अत्यंत सुंदर होते हुए भी (जैसे कि टेनिसन में है), यदि ऊँची सतह नहीं है, तो वह उच्च कलाकार नहीं कहला सकता।"[37] साहित्य में दृष्टिकोण एवं उसके सतही पक्ष का विशेष महत्व होता है। मानव सभ्यता का विकास अनेक प्रक्रियाओं से गुजरने के पश्चात् हुआ है। इसके सृजन के अनेक घटक भी रहे हैं। मुक्तिबोध इस मानवश्रोत के मनोवैज्ञानिक वह तक पहुँचने का प्रयास करते है।। उसके स्थूल पक्ष पर विचार करते हैं। मुक्तिबोध के अनुसार- "यह सच है कि जीवन की कुछ ऐसी गहरी

अनुभूतियाँ होती है जो कभी भी प्रकाश में नहीं आ पातीं। आ ही नहीं सकतीं। उन पर व्यावहारिक जगत की कुछ ऐसी बन्दिश और कैद होती है कि उनकी प्रकटीकरण सामाजिक अशोभनता की सीमा छू आता है।"[38]

मुक्तिबोध की 'कामायनी: एक पुनर्विचार' आलोचना तत्कालीन आलोचना परमपरा से भिन्न है। जिसमें उन्होंने युगीन समस्या को नवीन दृष्टिकोण प्रदान किया है। मुक्तिबोध का इतिहासबोध इस कृति में व्यापक रूप से व्याख्यायित हुआ है- "कामायनी की कमजोरी क्या है? वही जो प्रसाद की कमजोरी है। जिसप्रकार में आँसू में उनके रहस्यवाद कृत्रिम होता है, उसी प्रकार कामायनी में मूलकथा का घुमाव भी। मानव-संबंधों के और मानव-चरित्रों के भीतर उद्घाटित होनेवाली समस्याओं के क्षेत्र से ही पलायन किया गया है। यह पलायन उनके रहस्यवादी दर्शन ने कराया, जो दर्शन समस्याओं से व्यक्ति का छुटकारा तो कराता है, किंतु बाह्य जीवन-जगत में स्थित उन समस्याओं के अस्तित्व को समाप्त नहीं करता, उनका उन्मूलन नहीं करता।"[39]

वस्तुतः मुक्तिबोध इतिहास को सिर्फ घटनाओं एवं तथ्यों का संग्रह नहीं माना, अपितु उसके द्वंद्वात्मक संबंध को भी प्रमुखता से केन्द्र में रखा है। भारत: इतिहास और संस्कृति में मानवेतिहास की संरचना को व्याख्यायित किया है। उनकी रचना एवं आलोचना में इतिहासबोध का भी विवेचन है। उपर्युक्त पुस्तक में लेखक ने सभ्यता के विकास में मानव के परिवर्तित स्वरूप का भी उल्लेख किया गया है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक कालखंड के परिवर्तनकारी घटक का भी उल्लेख है। आर्यों का आगमन, मुगलों का आगमन और फिर ईस्ट-इंडिया

का भारत पर अधिकार, इन सभी परिवर्तनकारी घटक का मूल्यांकन प्रमुखता से किया गया है। मुक्तिबोध के इतिहासबोध में वैज्ञानिकता एवं तार्किकता प्रमुखता से उजागर हुआ है। मुक्तिबोध इतिहास के राजनैतिक प्रक्रिया के साथ-साथ उसके सांस्कृतिक स्वरूप को भी महत्वपूर्ण घटक मानते हैं।

संदर्भ

1. डॉ. अमरनाथ; हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली; राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 2012, पृ. सं.- 74
2. क्षोत्रिय, प्रभाकर; साहित्य की इतिहास दृष्टि; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 2010, पृ. सं.- 15
3. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र; हिंदी साहित्य का इतिहास; कांती पब्लिकेशन्स, दिल्ली; संस्करण: 2011, पृ. सं.- 21
4. द्विवेदी, हजारीप्रसाद; हिंदी साहित्य की भूमिका; राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 2016, पृ. सं.- 5
5. डॉ. नगेन्द्र (संपा.); हिन्दी साहित्य का इतिहास; मयूर पेपरबैक्स; संस्करण: 2012, पृ. सं.- 22

6. सिंह, डॉ. नामवर; इतिहास और आलोचना; राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 2012, पृ. सं.- 162-163

7. पांडेय, डॉ. मैनेजर; साहित्य और इतिहास दृष्टि; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1981, पृ. सं.- 4

8. कार, ई. एच.; इतिहास क्या है; मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली; संस्करण: 1987, पृ. सं.- 3

9. पांडेय, डॉ. मैनेजर; साहित्य और इतिहास दृष्टि, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1981, पृ. सं.- 22

10. 'मुक्तिबोध', गजानन माधव; भारत: इतिहास और संस्कृति; राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 2009, पृ. सं.- 13

11. ठाकुर, गजेन्द्र (सं.); नामवर सिंह (प्र. संपा.); प्रेमचंद प्रतिनिधि संकलन; नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली; संस्करण: 2002, तीसरी आवृत्ति, 2013, पृ. सं.- 4

12. दास, डॉ. श्यामसुंदर; कबीर ग्रंथावली (संपा.); प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली; संस्करण: 2013, पृ. सं.- 96

13. शर्मा, रामविलास; आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना; राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 2017, पृ. सं.- 43

14. मिश्र, रामदरश; हिंदी समीक्षा: स्वरूप और संदर्भ; दी मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड; संस्करण: 1974, पृ. सं.- 74

15. द्विवेदी, हजारीप्रसाद; अशोक के फूल; सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली; संस्करण: 1950, पृ. सं.- 61

16. 'मुक्तिबोध', गजानन माधव; भारत: इतिहास और संस्कृति; राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 2009, पृ. सं.- 30

17. वाजपेयी, आचार्य नंददुलारे; आधुनिक साहित्य; भारती-भंडार, इलाहाबाद; संस्करण: संवत् 2007, पृ. सं.- 319

18. जैन, नेमिचन्द्र; मुक्तिबोध रचनावली (खण्ड-5); राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1986, तीसरी आवृत्ति:2011, पृ. सं.- 311

19. वाजपेयी, आचार्य नंददुलारे; आधुनिक साहित्यः भारती-भंडार, इलाहाबाद; संस्करण: संवत् 2007, पृ. सं.- 9

20. त्रिपाठी, अरविंद (संपा.); हिंदी आलोचना के नवरत्न; शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली; संस्करण: 2013, पृ. सं.- 53

21. शर्मा, रामविलास; प्रगति और परंपरा; किताब महल, इलाहाबाद; संस्करण: 1948, पृ. सं.- 10

22. जैन, नेमिचन्द्र; मुक्तिबोध रचनावली (खण्ड-5); राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1986, तीसरी आवृत्ति:2011, पृ. सं.- 69

23. मिश्र, डॉ. रामदरश; हिंदी सीमक्षा: स्वरूप और संदर्भ; दी मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड; संस्करण: 1974, पृ. सं.- 282

24. पांडेय, डॉ. मैनेजर; साहित्य और इतिहास दृष्टि; वाणी प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1981, पृ. सं.- 167

25. चौहान, शिवदान सिंह; साहित्यानुशीलन; आत्माराम एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली; संस्करण: 1955, पृ. सं.- 2

26. 'मुक्तिबोध', गजानन माधव; भारत: इतिहास और संस्कृति; राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 2009, पृ. सं.- 17

27. चौहान, शिवदान सिंह साहित्यानुशीलन; आत्माराम एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली; संस्करण: 1955, पृ. सं.- 22

28. जैन, नेमिचन्द्र; मुक्तिबोध रचनावली (खण्ड-5); राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1986, तीसरी आवृत्ति:2011, पृ. सं.- 54

29. वाजपेयी, अशोक (सं.); गजानन मा. मुक्तिबोध: प्रतिनिधि कविताएँ; राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 2014, पृ. सं.- 14

30. जैन, नेमिचन्द्र; मुक्तिबोध रचनावली (खण्ड-5); राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1986, तीसरी आवृत्ति:2011, पृ. सं.- 42

31. जैन, नेमिचन्द्र; मुक्तिबोध रचनावली (खण्ड-5); राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1986, तीसरी आवृत्ति:2011, पृ. सं.- 44

32. सिंह, नामवर: कविता के नए प्रतिमान; राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 2014, पृ. सं.- 221

33. वाजपेयी, अशोक (संपा.); गजानन माधव 'मुक्तिबोध' प्रतिनिधि कविताएँ; राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; आवृत्तिः 2014, पृ. सं.- 171

34. चतुर्वेदी, रामस्वरूप; हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद; संस्करण: 2010, पृ. सं.- 201

35. वाजपेयी, अशोक (संपा.); गजानन मा. मुक्तिबोध प्रतिनिधि कविताएँ; राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; आवृत्ति: 2014, पृ. सं.- 93

36. पांडेय, डॉ. मैनेजर, साहित्य और इतिहास दृष्टि; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1981, पृ. सं.- 225

37. जैन, नेमिचन्द्र; मुक्तिबोध रचनावली (खण्ड-5); राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1986, तीसरी आवृत्ति:2011, पृ. सं.- 55

38. जैन, नेमिचन्द्र; मुक्तिबोध रचनावली (खण्ड-5); राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1986, तीसरी आवृत्ति:2011, पृ. सं.- 26

39. जैन, नेमिचन्द्र; मुक्तिबोध रचनावली (खण्ड-5); राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण: 1986, तीसरी आवृत्ति:2011, पृ. सं.- 323